साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 6, अंक : 33 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 7 अप्रैल से 13 अप्रैल 2021 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

हिमाचल प्रदेश के जंगलों में भी लगी आग, अप्रैल में 100 से ज्यादा मामले दर्ज, पर्यावरण के लिए हानिकारक

शिमला। उत्तराखंड की तरह हिमाचल प्रदेश में भी अप्रैल माह शुरू होते ही जंगलों में आग की घटनाएं बढ़ गई हैं। हालांकि यहां भी मार्च माह में जंगलों में आग लग रही थी। हिमाचल प्रदेश वन विभाग के आंकड़ों के मुताबिक मार्च 2021 में हिमाचल प्रदेश के जंगलों में 294 जगह आग लगी थी, जबकि अप्रैल के पहले पांच दिन के दौरान जंगलों में 100 से अधिक जगह आग लग चुकी है। ऐसे में वन विभाग ने हिमाचल सरकार से आग पर काबू पाने के लिए हैलीकॉप्टर की मांग भी की है और इसको लेकर वायु सेना की मदद लेने की भी तैयारी है।

विभाग के मुताबिक, जंगल में आग की सबसे अधिक घटनाएं उत्तराखंड के साथ सटे सिरमौर जिला में देखी गई हैं। यहां पिछले पांच दिनों से जंगल सुलग रहे हैं और इसमें लाखों की वन संपदा खत्म होने के साथ वन्य प्राणियों की भी हानि हुई है। अगर पिछले साल से तुलना करें तो पिछले साल कुल मिलाकर 1,027 वनों में आग की घटनाएं दर्ज की गई थी। जिसमें 8,480 हेक्टेयर जंगलों में वन संपदा को नुकसान पहुंचा है। वहीं इस साल वनों की आग की घटनाएं जल्दी शुरू होने और फायर सीजन के जल्द शुरू होने के चलते वन विभाग ने अपने कर्मचारियों की छुट्टियां रद्द कर दी हैं। गौरतलब है कि पिछले कुछ वर्षों में आगजनी की घटनाओं में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। वन विभाग के आंकड़ों के अनुसार जहां वर्ष 2015-16 में 672 घटनाओं में 5,750 हैक्टेयर वन भूमि को क्षति पहुंची थी, वहीं वर्ष 2016-17 में 1,832 आग की घटनाएं दर्ज की गई थी। इसी तरह 2017-18 में 1,164 और 2019-20 में 1,445 और 2020-21 में 1,027 घटनाएं दर्ज की गई थी। क्योंकि इस साल मॉनसून और विंटर सीजन में कम बारिश और कम बर्फबारी के कारण हिमाचल प्रदेश में सूखे जैसे हालात बने हुए हैं, तो ऐसे में इस बार प्रदेश में वनों में आग की घटनाओं में बढ़ोतरी होना तय माना जा रहा है।

पिछले साल मानसून सीजन में 28 फीसदी कम बारिश दर्ज की गई थी, जिसके चलते मानसून के बाद महिनों में भी वनों में आग की घटनाओं को देखा गया था। वहीं इस साल सर्दियों के सीजन में जनवरी माह में 58 फीसदी, फरवरी में 80 फीसदी और मार्च में 62 फीसदी कम बारिश होने की वजह से भूमि में नमी बहुत कम है। विशेषज्ञों का मानना है कि मौसम में आए बदलाव की वजह से हिमाचल में इस बार गर्मियां अधिक बढ़ गई हैं, जिससे आगजनी की घटनाओं में वृद्धि होगी। हिमाचल प्रदेश में वन विभाग की कुल 2026 बीटें हैं जिनमें से 339 अति संवेदनशील श्रेणी में आती हैं। ऐसे में इन संवेदनशील बीटों में आग की घटनाओं पर नजर रखने के लिए वन विभाग ने मुस्तैदी बढ़ा दी है। वन विभाग की पीसीसीएफ डॉ सविता का कहना है कि इस साल बारिश और बर्फबारी कम हुई है जिसकी वजह से जमीन में नमी कम है। इस कारण आग के ज्यादा मामले देखने को मिल रहे हैं। वनों में आग में नियंत्रण पाने के लिए विभाग की ओर से इस बार तकनीक का भी सहारा लिया जा रहा है। इसके अलावा सरकार से हेलीकॉप्टर की मांग भी की गई है ताकि आग में जल्दी नियंत्रण पाया जा सके।

वैश्विक सम्मेलन 22-23 अप्रैल को

अमेरिका ने जलवायु सम्मेलन में नहीं बुलाया पाकिस्तान को

न्यूयार्क। अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडेन ने जलवायु परिवर्तन पर होने वाले ऑनलाइन सम्मेलन में पाकिस्तान को आमंत्रित नहीं किया है। यह वैश्विक सम्मेलन 22-23 अप्रैल को होगा। खास बात ये है कि इस वर्ष के अंत में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (सीओपी26) से पहले बाइडेन के विशेष दूत जॉन कैरी भी इस मुद्दे पर चर्चा के लिए 1 से 9 अप्रैल को भारत, बांग्लादेश और यूएई की यात्रा करेंगे।

इस यात्रा में भी पाकिस्तान का नाम शामिल नहीं है। अमेरिका के इस कदम से पाकिस्तान बिलबिला गया है। इसी मुद्दे पर प्रधानमंत्री इमरान खान ने सोशल मीडिया पर अमेरिकी प्रशासन के खिलाफ नाराजगी जताई है। इमरान ने सोशल मीडिया पर तीन टिप्पणियों में लिखा, 'मैं पाकिस्तान को परमाणु सम्मेलन में नहीं बुलाए जाने के बाद से उठ रही आवाजों से परेशान हूं। हम जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने, स्वच्छ और हरा भरा पाकिस्तान बनाने का प्रयास कर रहे हैं। इसलिए हमारी ग्रीन पाकिस्तान की पहल, 10 अरब पेड़ लगाना, प्रकृति आधारित समाधान, नदियों की सफाई से हमने बीते 7 साल में काफी अनुभव प्राप्त किया है। हमारी नीतियों की सराहना की गई है और मान्यता दी गई है। हम किसी भी देश की मदद करने के लिए तैयार हैं, जो हमारे अनुभव से सीखना चाहता है। मैंने संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन 2021 के लिए पहले से ही प्राथमिकताएं तय कर ली हैं।'

प्रदूषण से न नदियां बचीं और न भूजल

नई दिल्ली। हमारे अहम सतही जलस्रोतों का 90 प्रतिशत हिस्सा अब इस्तेमाल करने के लायक नहीं बचा है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) और अलग अलग राज्यों की प्रदूषण निगरानी एजेंसियों के हालिया विश्लेषण ने इसकी पुष्टि की है। साल 2015 में वाटर ऐड की एक रिपोर्ट जारी हुई थी, जो शहरी विकास मंत्रालय, जनगणना 2011 और केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के आंकड़ों पर आधारित थी। इस रिपोर्ट में कहा गया था कि सतही पानी का 80 प्रतिशत हिस्सा प्रदूषित है। रिपोर्ट में प्रदूषण के लिए घरेलू सीवरेज, साफ-सफाई की अपर्याप्त सुविधाएं, खराब सेप्टेज प्रबंधन और गंदा पानी तथा साफ-सफाई के लिए नीतियों की गैरमौजूदगी को जिम्मेवार माना गया था। सिर्फ सतह का जल ही प्रदूषित नहीं है बल्कि हमारा भरोसेमंद भू-जल भी अब स्वच्छ नहीं रहा है। झारखंड में रांची महिला कॉलेज के शिक्षा विभाग की असिस्टेंट प्रोफेसर कुंजलता लाल का मत है कि भू-जल जल को पानी का भरोसेमंद और साफ स्रोत माना गया है। भू-जल जल सतही प्रदूषण से सुरक्षित होता है क्योंकि इसमें जियोलॉजिकल फिल्टर लगा होता है, जो पानी में से प्रदूषण तत्वों को बाहर निकाल देता है, जो मिट्टी के रास्ते रिस जाता है।

हमारी नदियां मर रही हैं। यही हाल ईकोसिस्टम का है, जो नदियों को बचाए रखता है। नदियों पर न केवल प्रदूषण बल्कि इसके रास्ते में बदलाव, खत्म होती जैवविविधता, बालू खनन और कैचमेंट एरिया के खत्म होने का भी असर पड़ा है। अन्य खुले जलाशय जैसे झील, तालाब या टैंक या तो अतिक्रमण का शिकार हैं या फिर वे सीवेज और कूड़े का डंपिंग ग्राउंड बन गए हैं। अपरिशोधित सीवेज और औद्योगिक कचरा बहाये जाने के कारण बंगलुरू के बेल्लादुर और वाथुर झील में जहरीला झाग कई बार समाचारों की सुर्खियां बन चुका है। ठोस कचरा व अंधाधुंध अतिक्रमण के कारण असम के दीपोर बील व अन्य झीलों को लेकर नेशनल ग्रीन ट्राइब्यूनल (एनजीटी) जांच कर चुका है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) की 2018 की रिपोर्ट के मुताबिक 36 राज्य व केंद्र शासित प्रदेशों में से 31 में नदियों का प्रवाह प्रदूषित है। महाराष्ट्र में सबसे ज्यादा 53 प्रदूषित प्रवाह हैं। इसके बाद असम, मध्यप्रदेश, केरल, गुजरात, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, गोवा, उत्तराखंड, मिजोरम, मणिपुर, जम्मू-कश्मीर, तेलंगाना, मेघालय, झारखंड, हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा, तमिलनाडु, नागालैंड, बिहार, छत्तीसगढ़, आंध्रप्रदेश, सिक्किम, पंजाब, राजस्थान, पुडुचेरी, हरियाणा और दिल्ली का नंबर आता है। साल 2015 में केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की तरफ से जारी की गई रिपोर्ट में बताया गया था कि 275 नदियों के 302 प्रवाह प्रदूषित हैं जबकि साल 2018 की रिपोर्ट में 323 नदियों के 351 प्रवाह के प्रदूषित होने का जिक्र है (नीचे देखें, ग्राफ= राज्यों में सबसे प्रदूषित प्रवाहों की संख्या)। पिछले तीन सालों में देखा गया है कि खतरनाक रूप से प्रदूषित 45 प्रवाह ऐसे हैं, जहां के पानी की गुणवत्ता बेहद खराब है। प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने अधिसूचित किया कि नदियों में छोड़े जाने वाले परिशोधित गंदे पानी की गुणवत्ता काफी खराब है और इसमें बोयोलॉजिकल ऑक्सीजन डिमांड यानी बीओडी (बीओडी प्रदूषण को मापने का एक पैमाना है) की मात्रा प्रति लीटर 30 मिलीग्राम है। एक लीटर पानी में 30 मिलीग्राम से अधिक बीओडी को पानी की गुणवत्ता बेहद खराब होने का संकेत माना जाता है।

देश की राष्ट्रीय नदी गंगा अभी बहस के केंद्र में है। साल-दर-साल गंगा नदी के प्रवाह में दर्ज होते प्रदूषण के स्तर से नदी को साफ करने के लिए की जा रही कोशिशों पर सवाल उठते हैं। पिछले साल अगस्त में एनजीटी, जो गंगा को साफ करने के कार्यक्रम की निगरानी करता है, ने केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से कहा था कि वह नदी के इन हिस्सों की शिनाख्त करे, जहां का पानी नहाने और पीने के योग्य है। बोर्ड ने इस बाबत एक मानचित्र तैयार किया जिसमें बताया गया है कि गंगा के मुख्य मार्ग के पानी की गुणवत्ता चिंताजनक रूप से खराब है। यहां तक कि सितंबर 2018 का मानचित्र बताता है कि मॉनसून खत्म होने के बाद भी प्रवाह प्रदूषित है और केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के क्लास-ए या क्लास-सी में भी नहीं आता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के क्लास ए का मतलब उन पेयजल स्रोतों से है, जिनके पानी को पारंपरिक तरीके से परिशोधित किए बिना रोगाणुमुक्त कर इस्तेमाल किया जा सकता है। वहीं, क्लास सी का मतलब उन पेयजल स्रोतों से है जिसके पानी को पारंपरिक तरीके से परिशोधित व रोगाणुमुक्त कर इस्तेमाल किया जा सकता है। एनजीटी ने यह पूछा था कि नदी का पानी नहाने लायक है कि नहीं, लेकिन मानचित्र में ये संकेत नहीं दिया गया कि नदी के पूरे बहाव में खुले तौर पर नहाने दिया जा सकता है या नहीं। क्लास सी गुणवत्ता वाले पानी का यह मतलब नहीं है कि वो क्लास बी की शर्तों को पूरा करता है। क्लास बी और सी के लिए बीडीओ की मात्रा प्रति लीटर अधिकतम 3 मिलीग्राम होनी चाहिए, लेकिन खुले तौर पर नहाने के लिए डिजॉल्व्ड ऑक्सीजन प्रति लीटर 5 मिलीग्राम होनी चाहिए जबकि क्लास सी के लिए प्रति लीटर 4 मिलीग्राम होनी चाहिए। इसके अलावा खुले तौर पर स्नान के लिए कुल कोलीफार्म प्रति मिली लीटर 500 एमपीएन मिला है, जो क्लास सी के लिए मान्य स्तर का दसवां हिस्सा है। अतः मानचित्र में साफ तौर पर यह संकेत अंकित किया जाना चाहिए कि कहां लोग नहाने के लिए जा सकते हैं। गंगा नदी के कन्नौज से लेकर गाजीपुर तक के हिस्से (मिर्जापुर और वाराणसी को छोड़कर) को मॉनसून के बाद (अगस्त 2018) के आंकड़ों में राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने असंतोषजनक बताया है। हालांकि, इन स्थानों पर टोटल कोलीफोर्म (टीसी)की मात्रा 500 मिनिमम प्रोपेबल नंबर (एमपीएन)/100 मिलीलीटर दर्ज की गई है, लेकिन जैव ऑक्सीजन मांग (बीओडी) और घुलनशील ऑक्सीजन (डीओ) की मात्रा क्लास बी के मानकों के भीतर रहा। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के मानचित्र, जिसे सुटेब्लिटी आफ रिवर गंगा नाम दिया गया है, में दर्ज लाल बिन्दुओं के जरिए बताया गया है कि इन स्थानों (ये क्लास ए और सी में शामिल नहीं हैं) के पानी को पारंपरिक/आधुनिक तौर पर परिशोधित व रोगाणुमुक्त करने के बाद पीने की इजाजत दी गई है। इस तरह के स्तर को केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के असल ÷वाटर क्वालिटी क्राइटेरिया÷ में श्रेणीबद्ध नहीं किया गया है। बोर्ड ने यह भी स्पष्ट नहीं किया है कि क्लास सी में जिस अत्याधुनिक ट्रीटमेंट या संगठित पारम्परिक व्यवस्था का जिक्र किया गया है, वो क्या है। ताजा रिकॉर्ड के मुताबिक, गंगा की सफाई पर मार्च 2017 तक 7,304.64 करोड़ रुपए खर्च किये जा चुके हैं, लेकिन गंगा और उसकी सहायक नदियों के पानी की गुणवत्ता में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है। केंद्रीय जल आयोग के आंकड़े (मई 2016-जून 2017 तक) बताते हैं कि गढ़मुक्तेश्वर से शहजादपुर के बीच गंगा में औसत बायोलॉजिकल ऑक्सीजन डिमांड वैल्यू (प्रदूषण का स्तर मापने का पैमाना) स्नान करने के योग्य भी नहीं है।

प्रदूषण जस का तस- केंद्र सरकार ने गंगा की सफाई को प्रमुख एजेंडे के रूप में प्राथमिकता देते हुए तीन साल पहले नदी सफाई कार्यक्रम शुरू किया था, लेकिन इस कार्यक्रम के शुरू होने के तीन साल बाद भी यमुना में पानी की गुणवत्ता में कोई सुधार नहीं दिखा है। सुप्रीम कोर्ट और एनजीटी के कई आदेशों के बावजूद दिल्ली में यमुना का लगभग पूरा इलाका बुरी तरह प्रदूषित है। पल्ला और सुरघाट (वजीराबाद के बहाव) को छोड़ दें, तो मॉनसून के बाद ये नदी खत्म हो जाती है। अब नजरें दो हस्तक्षेपों-नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल के ÷मैली से निर्मल यमुना÷ को लागू करने और दिल्ली के तीन सबसे बड़े नालों के साथ इंटरसेप्टर सीवेज लाइनें बिछाने पर टिकी हुई हैं। कोविड माहामारी के चलते भारत सरकार की तरफ से लागू किए गए लाकडाउन से गंगा और यमुना जैसी नदियों की गुणवत्ता पर पड़े प्रभावों को जानना भी दिलचस्प है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने लॉकडाउन से पहले (15 से 21 मार्च) व लॉकडाउन के दौरान (22 मार्च से 15 अप्रैल) गंगा नदी के पानी की गुणवत्ता का विश्लेषण किया, जिसमें साफ तौर पर पता चला कि लॉकडाउन से इस पर कोई असर नहीं पड़ा। इसके विपरीत यमुना नदी के पानी की गुणवत्ता में लॉकडाउन के दौरान मामूली सुधार हुआ, हालांकि नदी प्रदूषित ही रही।

अध्ययन में कहा गया है कि यूरेनियम का मुख्य स्रोत प्राकृतिक है, लेकिन सिंचाई के लिए भारी पैमाने पर भू-जल की निकासी से भू-जल स्तर में गिरावट और नाइट्रोजन उर्वरकों के बेतहाशा इस्तेमाल से फैलने वाला नाइट्राइट प्रदूषण इस समस्या को संभवत= और बढ़ा रहा है। वंगोश ने एक बयान में कहा, ÷राजस्थान में हमारे द्वारा परीक्षण किए गए कुओं में से एक तिहाई कुएं के पानी में यूरेनियम का स्तर विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के सुरक्षित पेयजल मानकों से अधिक है।÷ डब्ल्यूएचओ ने यूरेनियम का सुरक्षित पेयजल मानक 30 पीपीबी निर्धारित किया है।

गैर जरूरी जगहों पर आरओ का इस्तेमाल अब भी जारी, डेढ़ बरस बाद भी नहीं बन पाए नियम

मुंबई। नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) के रोक संबंधी आदेश के बावजूद रिवर्स ऑस्मोसिस (आरओ) मशीन का घरेलू, व्यावासायिक और औद्योगिक प्रयोग जारी है। रिवर्स ऑस्मोसिस पानी के खारेपन को दूर करने वाली प्रक्रिया है। खारेपन को दूर करने वाली इस फिल्टर प्रक्रिया में करीब चार गुना से ज्यादा पानी की बर्बादी भी होती है। अभी तक यह प्रमाणित नहीं है कि जिस आरओ मशीन को घरों में साफ पानी के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है उसमें किए जाने वाले सभी दावे सही हैं या नहीं।

केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय, केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय, भारतीय मानक ब्यूरो (बीआईएस) व अन्य पार्टियों को कई बार दोहराया कि है वे आरओ के इस्तेमाल पर उचित तरीके से रोक के लिए अधिसूचना जारी कर उसका पालन करें। हालांकि अभी तक इसका प्रारूप नहीं तैयार हो सका है। वहीं, केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय की ताजा स्टेटस रिपोर्ट में यह बात सामने आई है कि भारतीय मानक ब्यूरो (बीआईएस) के बीच अभी कई तकनीकी पक्ष पर मतभेदों के चलते सहमति भी नहीं बन पाई है। 5 अप्रैल, 2021 को इस लंबित मामले पर एनजीटी में सुनवाई भी होनी है। एनजीटी ने 13 जुलाई, 2020 को अपने आदेश में कहा था कि उनके 20 मई, 2019 के आदेश का अभी तक पालन नहीं हो पाया है। इस आदेश में एक उचित अधिसूचना जारी कर आरओ के इस्तेमाल पर रोक लगाने के लिए कहा गया था। पीठ ने कहा यहां तक कि एक वर्ष बीत चुके हैं और केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय की ओर से लॉकडाउन का ग्राउंड लेते हुए अतिरिक्त समय की मांग की जा रही है। इसलिए 31 दिसंबर, 2020 तक यह काम हो जाना चाहिए। एनजीटी ने 20 मई, 2019 को अपने आदेश में केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय को आदेश दिया था वह जल्द से जल्द अधिसूचना जारी कर उन क्षेत्रों में आरओ पर रोक लगवाए जहां पानी खारा नहीं है। साथ ही आरओ निर्माता कंपिनयों को यह आदेश जारी करें कि उनकी मशीनें पानी की सफाई के दौरान कम से कम 60 फीसदी पानी का शोधन करें। इसके बाद इन मशीनों को और असरदार बनाकर इनकी क्षमता 75 फीसदी शुद्ध पानी देने के लायक बनाई जानी चाहिए। पीठ ने यह स्पष्ट किया था कि आरओ के जरिए बर्बाद होने वाले पानी का इस्तेमाल बागवानी और गाड़ी या फर्श धुलाई में किया जाना चाहिए। पीठ ने कहा था कि गाइडलाइन में यह प्रावधान किया जाए कि आरओ निर्माता कंपनी मशीनों में कम से कम 150 मिलीग्राम प्रति लीटर टीडीएस की मात्रा को सेट करें साथ ही कैल्सियम और मैग्नीशियम की न्यूनतम मात्रा भी पानी में सुनिश्चित हो। इसके अलावा आरओ निर्माताओं को खनिज और टीडीएस की मात्रा के बारे में मशीनों पर स्पष्ट लेबलिंग भी की जाए। बहरहाल केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय की एक अप्रैल, 2021 को जारी स्टेटस रिपोर्ट में कहा गया है कि सभी तरह के वाटर प्यूरीफायर सिस्टम को बीआईएस से मान्यता देने के लिए नए ड्राफ्ट में कहा गया है। जबकि आरओ संबंधी पर्यावरण मानक तैयार करने के लिए बीआईएस को करीब 18 महीने का समय चाहिए। ऐसे में अधिसूचना जारी होने के बाद बीआईएस को प्रोटोकॉल विकसित करने के लिए इतना वक्त चाहिए होगा। बीआईएस को यह प्रोटोकॉल मंजूरी की अनुमति (टाईप ऑफ कन्फर्मिटी), उत्पादन इत्यादि के लिए चाहिए। वहीं बीआईएस ने अधिसूचना के नए ड्राफ्ट पर अपने कमेंट में 12 मार्च, 2021 को कहा था पानी की सफाई के लिए रिवर्स ऑस्मोसिस प्रणाली का रेग्यूलेशन बनाने में वह सदस्य जरूर था लेकिन उससे इस विषय में कोई राय नहीं ली गई। वाटर प्यूरीफिकेशन सिस्टम के इस्तेमाल को रेग्युलेट करने के लिए नई अधिसूचना में किसी तरह का तकनीकी पक्ष नहीं शामिल है ऐसे में पर्यावरण मानक किस तरह के वाटर प्यूरीफिकेशन सिस्टम के लिए बनाए जाएं यह भी बहुत ज्यादा स्पष्ट नहीं है। इसमें सभी तरह का वाटर प्यूरीफिकेशन सिस्टम (डब्ल्यूपीएस) शामिल है। 5 अप्रैल, 2021 को एनजीटी इस लंबित मामले में सुनवाई कर आदेश जारी कर सकता है।

अनुमान से 10 करोड़ वर्ष बाद हुआ था धरती पर ऑक्सीजन का विकास

कोलकाता। हाल ही में किए एक नए शोध से पता चला है कि धरती पर ऑक्सीजन का विकास वर्तमान अनुमान से करीब 10 करोड़ वर्ष बाद हुआ था। इस विकास ने धरती पर जीवन के लिए मार्ग प्रशस्त किया था। अनुमान है कि धरती पर ऑक्सीजन में महत्वपूर्ण वृद्धि लगभग 243 करोड़ साल पहले हुई थी, जिसे ग्रेट ऑक्सिडेशन एपिसोड की शुरुआत कहते हैं जोकि पृथ्वी के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है।

यह जानकारी दक्षिण अफ्रीका में चट्टानों के विश्लेषण में सामने आई है। इससे जुड़ा शोध यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफ़ोर्निया और अंतराष्ट्रीय शोधकर्ताओं की एक टीम द्वारा किया गया है, जोकि जर्नल नेचर में प्रकाशित हुआ है। शोध के अनुसार अपनी प्रारंभिक उपस्थिति के बाद ऑक्सीजन में नाटकीय रूप से उतार-चढ़ाव आता रहा है, जब तक कि वो बहुत बाद में वायुमंडल का स्थायी घटक नहीं बन गया था। यह उतार-चढ़ाव वातावरण में मौजूद ऑक्सीजन और मीथेन जैसी अन्य ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा के बीच एक सीधे संबंध को स्पष्ट करते हैं जो पृथ्वी पर अतीत में कुछ सबसे चरम जलवायु परिवर्तनों को समझाने में मदद कर सकते हैं। उस अवधि के दौरान पृथ्वी ने चार हिमयुगों का अनुभव किया था। जब पूरी धरती लाखों वर्षों तक बर्फ में ढंक गई थी। इस शोध से जुड़े शोधकर्ता एंड्रे बेकर के अनुसार वातावरण में मौजूद ऑक्सीजन के स्तर में आए परिवर्तन ने इन घटनाओं को समाप्त कर दिया था। वैज्ञानिकों के मन में अक्सर यह सवाल रहता है कि जब पृथ्वी पर सब कुछ बर्फ से ढंका था, तब उस समय से यह धरती कैसे उबर पाई थी। उनके अनुसार वातावरण में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ी तो अन्य ग्रीनहाउस गैसों जैसे मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में कमी आई थी। इस वजह से सतह के नीचे का तापमान जमाव बिंदु से नीचे चला गया था। उसी समय ज्वालामुखियों में हुए विस्फोट के चलते धरती गर्म हो गई और बर्फ पिघल गई थी। जिससे बड़ी मात्रा में कार्बनडाइऑक्साइड मुक्त हुई थी। जिसने तापमान में वृद्धि कर दी थी। बेकर ने बताया कि पहले हम यह सोचते थे कि यदि वातावरण में ऑक्सीजन पहले से ही स्थिर रूप में मौजूद थी तो यह चौथे हिमयुग की घटना क्यों हुई थी। हमें पता चला है कि उस समय तक ऑक्सीजन स्थिर नहीं थी। शोध के अनुसार ऑक्सीजन का स्थायी उदय वास्तव में पैलियोप्रोटेरोज़ॉक एरा में चौथे और अंतिम हिमयुग के बाद हुआ था। इस महान ऑक्सीडेशन प्रकरण की शुरुवात के बाद 15 करोड़ वर्षों तक पर्यावरण में स्थिरता बदलाव की दूसरी प्रमुख अवधि तक रही थी। प्रीकैम्ब्रियन युग के अंत तक वातावरण में ऑक्सीजन का स्तर बढ़ता रहा और इसी तरह जलवायु में बदलाव आते रहे। उनके अनुसार हमें लगता था कि एक बार बढ़ने के बाद ऑक्सीजन का स्तर फिर से नीचे नहीं आएगा पर ऐसा नहीं है, उसमें उतार चढ़ाव आते रहे हैं। जोकि जीवन की उत्पत्ति और उसके विनाश से जुड़ा है।

नई खोज : मछली के बेकार फेंके गए हिस्सों से वैज्ञानिकों ने बनाई पर्यावरण अनुकूल प्लास्टिक

न्यूयार्क। वैज्ञानिकों ने मछली के बेकार, फेंके गए हिस्सों से प्लास्टिक बनाने में सफलता हासिल की है जो ने केवल पर्यावरण के अनुकूल है साथ ही इससे बढ़ते कचरे को भी नियंत्रित किया जा सकता है। इससे जुड़ी रिपोर्ट अमेरिकन केमिकल सोसाइटी द्वारा आगामी 08 अप्रैल को होने वाली मीटिंग में प्रस्तुत की जाएगी। आज हम अपने चारों ओर देखें तो हमें अपने आसपास हर जगह प्लास्टिक से बनी चीजें आसानी से देखने को मिल जाएंगी। हम बहुत हद तक इसपर निर्भर हो चुके हैं। बात चाहे जूतों की हो, कपड़ों की, टायरों में या फ्रिज जैसे उपकरणों और निर्माण सामग्री की हो हर जगह प्लास्टिक दिख ही जाएगी।

हमारी जिंदगी का अहम हिस्सा बनने के बावजूद भी इससे जुड़ी समस्याएं भी कम नहीं हैं। कच्चे तेल से बना यह पारंपरिक पॉलीयूरेथेन प्लास्टिक न केवल जहरीला होता है साथ ही इसे नष्ट होने में भी काफी वक्त लग जाता है जिस वजह से यह पर्यावरण के लिए भी एक बड़ी समस्या है। हाल के दशकों में प्लास्टिक का उत्पादन तेजी से बढ़ा है, एक अन्य शोध से पता चला है कि हम 1950 से लेकर अब तक 830 करोड़ टन से अधिक प्लास्टिक का उत्पादन कर चुके हैं। जिसके 2025 तक दोगुना हो जाने का अनुमान है । दुनिया भर में हर मिनट 10 लाख पीने के पानी की बोतलें खरीदी जाती हैं जो कि प्लास्टिक से बनी होती है। ऐसे में इसके कारण बढ़ता प्लास्टिक प्रदूषण अपने आप में एक बड़ी समस्या है। लेकिन हाल ही में वैज्ञानिकों ने मछली के शरीर के बेकार फेंके गए अंगों जैसे सिर, हड्डियों और त्वचा से एक बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक बनाने में सफलता हासिल की है। इस परियोजना के मुख्य अन्वेषक, फ्रांसेस्का कीर्टन के अनुसार यदि इसे सफलतापूर्वक विकसित करा जाता है तो मछली के तेल पर आधारित यह पॉलीयूरेथेन प्लास्टिक सम्बन्धी जरूरतों को पूरा कर सकता है। प्लास्टिक के निर्माण में यह जरुरी है कि हम इस बात का ध्यान रखें की एक बार इस्तेमाल होने के बाद उसका क्या होगा, क्या उसे ठीक से रीसायकल किया जा सकता है और उसका पुनः उपयोग कर सकते हैं। इसके लिए उन्होंने कचरे में पड़े मछली के बेकार हिस्सों से इस प्लास्टिक को बनाने की शुरुवात की थी।

पारम्परिक पॉलीयूरेथेन से क्यों बेहतर है यह- इसके विपरीत यदि पारम्परिक रूप से पॉलीयूरेथेन के उत्पादन को देखें तो उसमें पर्यावरण और सुरक्षा सम्बन्धी कई समस्याएं हैं। इसके लिए कच्चे तेल की जरुरत पड़ती है। जोकि एक गैर-नवीकरणीय संसाधन है। साथ ही इसके लिए एक रंगहीन और अत्यधिक विषाक्त गैस फॉस्जीन की आवश्यकता होती है। इसके निर्माण में आइसोसायनेट्स उत्पन्न होते हैं जो स्वास्थ्य के लिए खतरनाक होते हैं। इससे जो प्लास्टिक बनता है वो आसानी से नष्ट नहीं होता है। साथ ही इसके विघटन से यह कैंसर पैदा करने वाले घटकों को जन्म देता है। इसके आलावा पेट्रोलियम के स्थान पर पौधों से मिलने वाले तेल से भी पॉलीयूरेथेन का उत्पादन किया जाता है, पर उसमें सबसे बड़ी समस्या यह है कि यदि इस तेल के लिए पौधों को उगाया जाएगा तो भोजन के लिए फसलों के उत्पादन का क्या होगा। ऐसे में मछली के बेकार हिस्सों से इसका निर्माण किया जा सकता है। इसके लिए वैज्ञानिकों ने इन बेकार हिस्सों से प्राप्त तेल को पॉलीयूरेथेन में परिवर्तित करने के लिए एक प्रक्रिया विकसित की है। कीर्टन के अनुसार लेकिन इसमें सबसे बड़ी समस्या दुर्गन्ध की थी, जब तेल पर काम कर रहे थे तो वो मछली की तरह दुर्गन्ध कर रहा था, लेकिन प्रक्रिया के दौरान उसमें से यह दुर्गन्ध भी पूरी तरह गायब हो गई थी। एक अन्य प्रयोग में शोधकर्ताओं ने यह जांचने का प्रयास किया है कि एक बार इस प्लास्टिक का उपयोग हो जाने के बाद यह कितनी जल्दी और आसानी से नष्ट हो सकता है। इसके लिए उन्होंने एक एंजाइम लिपेस का इस्तेमाल किया है जो मछली के तेल में मौजूद वसा को तोड़ने में सक्षम है। उन्हें पता चला की इस एंजाइम की मदद से ऐसा किया जा सकता है। यह दिखाता है कि इसे आसानी से बायोडिग्रेड किया जा सकता है। अगले चरण में वैज्ञानिकों की योजना इसके भौतिक गुणों का अध्ययन करने की है जिससे इसे वास्तविक दुनिया में लाने की है जिससे इसका उपयोग पैकेजिंग और कपड़ों के निर्माण में किया जा सके।

क्या एरोपोनिक्स तकनीक की मदद से भारत के खाद्य उत्पादन में किया जा सकता है इजाफा

रुड़की। इंजीनियरिंग कॉलेज, रुड़की के कृषि विभाग के मुताबिक, एरोपोनिक्स तकनीक की मदद से देश के खाद्य उत्पादन में इजाफा किया जा सकता है। दुनिया भर में कृषि के क्षेत्र में तेजी से प्रगति हो रही है। जिस तरह से आबादी बढ़ रही है उसे देखते हुए यह जरुरी भी है कि कृषि में नए तरीकों को विकसित किया जाए और जो तकनीकें पहले से ही हैं उन्हें अपनाया जाए, जिससे बढ़ती जरूरतों को पूरा किया जा सके। यदि भारत की बात करें तो यह जैवविविधता से समृद्ध देश है। जहां कृषि और बागवानी के क्षेत्र में असंख्य संभावनाएं हैं।

लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि इसके बावजूद हमारे देश में नवीनतम तकनीकी कौशल की कमी है। यही वजह है कि अन्य देशों की तुलना में यहां अनाज, सब्जियों और फलों का प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम है। अनुमान है कि भारत की आबादी 2025 तक 150 करोड़ के करीब होगी। ऐसे में उसकी खाद्य सम्बन्धी जरूरतों को पूरा करना अपने आप में बड़ी चुनौती होगा। एरोपोनिक्स जैसी तकनीकें इस क्षेत्र में मदद कर सकती है। ऐसे में जरुरी है कि कृषि क्षेत्र में नवीनता लाइ जाए। किसानों को वैज्ञानिक डेटा और नवीनतम तकनीक का उपयोग करना चाहिए जिससे पैदावार में सुधार किया जा सके साथ ही उन्हें कृषि के आधुनिक तरीकों से भी अपने आप को अपडेट रखना होगा। कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग रुड़की का कृषि विभाग इसी दिशा में काम कर रहा है। वहां की कृषि विभाग की मुख्य दीप गुप्ता ने बताया कि एरोपोनिक्स एक ऐसी ही आधुनिक तकनीक का उदाहरण है, जिसका उपयोग कृषि में सुधार के लिए किया जा सकता है। यह वह प्रणाली है जिसमें पौधे मिट्टी की बिना भी हवा में बढ़ सकते हैं। यह तकनीक कृषि की अन्य तकनीकों जैसे एक्वापोनिक्स, हाइड्रोपोनिक्स और प्लांट टिशू कल्चर से अलग है। इस प्रणाली में एक बंद और अर्ध-बंद वातावरण में पौधों को बिना मिटटी के विकसित करना होता है। जिसके लिए पोषक तत्वों से भरपूर पानी को उसकी जड़ों पर छिड़का जाता है। इसकी मदद से उसमें तनों की कोशिकाओं का विकास होता है। यदि वास्तव में देखा जाए तो एरोपोनिक्स कोई नई प्रणाली नहीं है इसे 1973 में कैबट फाउंडेशन लैबोरेटरीज द्वारा विकसित किया गया था। एरोपोनिक्स सिस्टम उन सब्जियों की खेती के लिए उपयुक्त है जिनकी जड़ें ऑक्सीजन और नमी जैसी सर्वोत्तम स्थिति को अपना सकती हैं। इन्हें नियंत्रित तापमान और आद्रता की स्थिति में उगाया जा सकता है। इस तकनीक की मदद से किसान पोषक तत्वों से भरपूर फसल प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही इससे पानी और पोषक तत्वों की भी बचत होती है। इसपर किए गए शोध के अनुसार पारंपरिक रूप से एक किलोग्राम बैंगन के उत्पादन के लिए 250 से 350 लीटर पानी की जरुरत होती है, जबकि हाइड्रोपोनिक्स तकनीक में 65 लीटर पानी लगता है। वहीं एरोपोनिक्स की मदद से यह खपत 15 से 20 लीटर रह जाती है। इस तकनीक में फसलों को पॉलीहाउस में लगाना सबसे उपयुक्त रहता है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक : डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008